वन पंचायत और वनाधिकार अधिनियम, 2006- विशेषताएं, समानताएं, भिन्नता एवं आपसी सहयोग की संभावनाएं

- विजय महाजन एवं जीत सिंह

अनुक्रमणिका

1- परिचय 2

2- वन पंचायत व्यवस्था - उदभव एवं ह्रास 4

3- पुराने, वर्तमान और प्रस्तावित प्रणाली के तहत वन अधिकार 7

4- पुराने, वर्तमान और प्रस्तावित प्रणालियों के तहत ग्राम वनों का प्रशासन 10

5- पुराने, वर्तमान और प्रस्तावित प्रणालियों के तहत सामुदायिक वनों का उपयोग 13

6- पर्वतीय आजीविका की समृद्धि में पंचायती वनों की भूमिका 16

7- निष्कर्ष और सिफारिशें 17

8- सन्दर्भ 19

वन पंचायत और वनाधिकार अधिनियम, 2006- विशेषताएं, समानताएं, भिन्नता एवं आपसी सहयोग की संभावनाएं

1- परिचय

उत्तराखंड के पर्वतीय जिलों में वन पंचायत व्यवस्था, सामुदायिक वन प्रबंधन की एक अनूठी व्यवस्था है जो जीविका और जीवन के लिए सीधे वनों पर निर्भर समुदायों के पारंपरिक और प्रथागत अधिकारों को मान्यता देती है। ये पंचायतें वनों की सुरक्षा, वनीकरण, वन संवर्धन के साथ साथ वनाग्नि, अतिक्रमण और अवैध शिकार को रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। इसके अलावा, राज्य सरकार ने इन पंचायतों को, मिशन 2030 के तहत सतत विकास लक्ष्य -15 (भूमि पर जीवन) प्राप्त करने में महत्वपूर्ण हितधारकों के रूप में मान्यता दी है। पिछले तीन-चार दशकों में इन पंचायतों की जिम्मेदारियों की सूची तो बढ़ी है, लेकिन उनके अधिकारों और शक्तियों में भारी कटौती की गई है। जिम्मेदारियों तथा अधिकारों के इस असुंतलन ने ग्रामीण आजीविका का संवर्धन करने और वनों के संरक्षण के लिए इन पंचायतों की क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है।

वन पंचायतों की भांति ही अनुसूचित जनजाति और अन्य पारंपरिक वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006 (वन अधिकार अधिनियम, या संक्षेप में एफ.आर.ए.) भी वनों पर निर्भर जनजातियों और अन्य वन निवासियों के पारम्परिक एवं प्रथागत वन अधिकारों को मान्यता देता है. चूँकि वन पंचायतों का एक लम्बा इतिहास एवं अनुभव है, इसलिए ये सामुदायिक पंचायतें वन अधिकार कानून के तहत प्रदत सामुदायिक वन अधिकारों के संचालन और प्रबंधन हेतु सबसे बेहतर संस्थागत तंत्र की भूमिका अदा कर सकती हैं.

वन अधिकार अधिनियम न सिर्फ प्रथागत और पूर्व में प्रदान किए गए वन अधिकारों को मान्यता देता है और पुनर्स्थापित करता है, बल्कि वन के प्रबंधन और संरक्षण के लिए एक समुदाय के स्वामित्व वाली वन प्रबंधन संगठन के गठन की भी व्यवस्था प्रदान करता है। अधिनियम की धारा 3 (1) (बी) सामुदायिक वन अधिकारों जैसे निस्तार या पूर्ववर्ती रियासतों, जमींदारी या शाशकों द्वारा प्रदत्त या मान्यता प्राप्त वन अधिकारों की मान्यता, बहाली और निहित करने का प्राविधान देता है.

वर्तमान वन पंचायत नियमावली में उपयुक्त संशोधनों के साथ, एफ.आर.ए. के तहत सामुदायिक वन अधिकार (सीएफआर) को लागू करने के लिए एक संस्थागत तंत्र के रूप में मान्यता दी जा सकती है। इस लेख में वन पंचायतों की प्रासंगिकता को वन अधिकार कानून के आलोक में विवेचना करने का प्रयास किया गया है। यह लेख भारतीय वन अधिनियम के तहत जारी वन पंचायत नियमों की वैधानिक स्थिति, वन अधिकारों की स्थिति, वन प्रबंधन प्रणाली और लघु वनोपज के संग्रह तथा निष्पादन के अधिकारों का विश्लेषण करता है। इसके बाद यह लेख वन अधिकार कानून की उपयुक्त धाराओं विशेष रूप से धारा 3 और 5 के प्राविधानों का उपयोग करते हुए वन पंचायतो को सशक्त करने का सुझाव देता है। यदि आवश्यक हो, तो पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार) अधिनियम, 1996 (पेसा) के प्रासंगिक प्रावधानों का पांचवीं अनुसूची के क्षेत्रों में उपयोग कर

सामुदायिक वन भूमि के प्रबंधन एवं सरक्षण में स्थानीय लोगों की भूमिका को बढ़ाया जा सकता है। इसके अलावा भी कई राज्यों के भूमि एवं वन कानूनों का उपयोग कर वन प्रवंधन में आम लोगों की हिस्सेदारी बढ़ाई जा सकती है.

सामुदायिक वन अधिकार (सी,एफ.आर.) और सामुदायिक वन संसाधन (सी.एफ.आर.ई.) अधिकार जिनमें वनों की रक्षा, संरक्षण, पुनर्जनन और प्रबंधन का अधिकार शामिल है, एफ.आर.ए. के सबसे सशक्त प्रावधान हैं। कई कार्यकर्ताओं और इस विषय के विशेषज्ञ, मानते हैं कि एफ.आर.ए. के तहत प्रदत्त ये अधिकार देश में अब तक के सबसे बड़े भूमि सुधार को लागू करने का एक ऐतिहासिक अवसर है। हालांकि, इन अधिकारों को मान्यता देने के लिहाज से वन अधिकार कानून का प्रदर्शन अभी तक निराशाजनक रहा है. जनजातीय कार्य मंत्रालय द्वारा जारी आंकड़ों के अनुसार पुरे देश में अभी तक सामुदायिक वन अधिकारों के कुल दर्ज़ दावों मैं से केवल लगभग 50% दावे ही अनुमोदित हुए हैं।

जनजातीय मामलों के मंत्रालय की रिपोर्ट के अनुसार, जनवरी 2020 तक, देश भर के आदिवासी एवं अन्य परम्परागत वन निवासी समुदायों ने वन भूमि के स्वामित्व और उपयोग के अधिकार प्राप्त करने के लिए लगभग 40.25 लाख दावे दायर किए थे। हालांकि, केवल 19 लाख दावे, जो कि लगभग 46% है, स्वीकृत किए गए थे। रिपोर्ट से यह भी पता चलता है कि ग्राम सभा या डी.एल.सी. के स्तर पर सबसे अधिक दावों को खारिज कर दिया गया है। शीर्ष पांच प्रदर्शन करने वाले राज्य ओडिशा, त्रिपुरा, केरल, झारखंड और आंध्र प्रदेश हैं जहां लगभग 60% दावे अनुमोदित हुए हैं। नीचे के 5 प्रदर्शन करने वाले राज्य गोवा, बिहार, उत्तराखंड, कर्नाटक और हिमाचल प्रदेश हैं जहां लगभग 2-5% दावे ही अनुमोदित हुए हैं ।

वन अधिकार अधिनियम, 2006 **के तहत** 31.01.2020 **तक कुल प्राप्त**, **वितरित और अस्वीकृत दावे**

राज्य	31.01.2020 **तक प्राप्त दावों की संख्या**			31.01.2020 **तक वितरित दावों की संख्या**			**अस्वीकृत दावों की संख्या**	**वितरित दावों का प्रतिशत**
	व्यक्तिगत	**सामुदायिक**	**कुल**	**व्यक्तिगत**	**सामुदायिक**	**कुल**		
आंध्र प्रदेश	1,77,446	4,062	1,81,508	96,675	1,374	98,049	75,927	54.02%
असम	1,48,965	6,046	1,55,011	57,325	1,477	58,802	NA/NR	37.93%
बिहार	8,022	NA/NR	8,022	121	NA/NR	121	4,215	1.51%
छत्तीसगढ़	8,58,682	31,558	8,90,240	4,01,251	21,967	4,23,218	4,61,590	47.54%
गोवा	9,758	378	10,136	17	8	25	47	0.25%
गुजरात	1,82,869	7,187	1,90,056	90,188	3,516	93,704	62,256	49.30%
हिमाचल प्रदेश	2,466	234	2,700	129	35	164	NA/NR	6.07%

झारखण्ड	1,07,032	3,724	1,10,756	59,866	2,104	61,970	28,107	55.95%
कर्नाटक	2,75,446	5,903	2,81,349	14,667	1,406	16,073	1,80,956	5.71%
केरल	43,237	1,012	44,249	26,256	174	26,430	12,073	59.73%
मध्य प्रदेश	5,85,239	42,182	6,27,421	2,29,027	27,970	2,56,997	3,59,216	40.96%
महाराष्ट्र	3,62,679	12,037	3,74,716	1,65,032	7,084	1,72,116	45,525	45.93%
ओडिशा	6,20,785	14,106	6,34,891	4,37,184	6,577	4,43,761	1,48,762	69.90%
राजस्थान	74,414	1,441	75,855	38,007	103	38,110	36,229	50.24%
तमिलनाडु	32,983	1,005	33,988	6,111	276	6,387	11,742	18.79%
तेलंगाना	1,83,252	3,427	1,86,679	93,639	721	94,360	83,757	50.55%
त्रिपुरा	2,00,358	277	2,00,635	1,27,931	55	1,27,986	68,622	63.79%
उत्तर प्रदेश	92,520	1,124	93,644	17,712	843	18,555	74,945	19.81%
उत्तराखंड	3,574	3,091	6,665	144	1	145	6,510	2.18%
पश्चिम बंगाल	1,31,962	10,119	1,42,081	44,444	686	45,130	96,587	31.76%
कुल	41,01,689	1,48,913	42,50,602	19,05,726	76,377	19,82,103	17,57,136	46.63%

2- वन पंचायत व्यवस्था - उदभव एवं ह्रास

उत्तराखंड में सामुदायिक वन प्रबंधन हेतु गठित वन पंचायत व्यवस्था का गौरवशाली इतिहास रहा है। 1877 से 1910 तक ब्रिटिश सरकार ने धीरे-धीरे वन सम्बन्धी कानूनों, नीतियों और विनियमों को लागू कर स्थानीय वन पर नियंत्रण कर लिया था। वन कानूनों के बढ़ते इस शिकंजे नेआखिरकार, स्थानीय लोगों को वन और वन उत्पादों के उपयोग से प्रतिबंधित कर दिया। इन प्रतिबंधों ने उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्र की ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सीधे प्रभावित किया। तत्कालीन सरकार के वनों के उपयोग को लेकर अख्तियार तानाशाही रवैये ने स्थानीय लोगों को सरकार और वन और वन उत्पादों से संबंधित उसकी नीतियों के खिलाफ विद्रोह करने के लिए उकसाया।

स्थानीय लोगों का तत्कालीन सरकार के विरुद्ध विद्रोह 1916 में तेज हो गया और 1921 तक जारी रहा, जब औपनिवेशिक सरकार ने इस मुद्दे को हल करने के लिए एक शिकायत समिति का गठन करने का फैसला किया। शिकायत समिति की सिफारिशों के आधार पर, तत्कालीन सरकार ने किसी भी गांव के पास के जंगल को उसके निवासियों को सौंपने पर सहमति व्यक्त की।

ऐसे जंगल के प्रबंधन के लिए 1931 में अनुसूचित जिला अधिनियम, 1874 के अनुच्छेद -6 के तहत 'कुमाऊं पंचायत वन नियम' जारी किए गए थे[1]। इन ऐतिहासिक नियमों ने ग्रामीणों को अपने गांवों में और उसके आसपास के जंगल का प्रबंधन करने के लिए स्वायत्तता प्रदान की। 1931 के नियमों ने जंगल पर ग्रामीण पर्वतीय समुदायों के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, मनोरंजक, पारिस्थितिक और निवास के दावे को मान्यता दी। 1976 में इन नियमों में पहली बार संशोधन होने से पहले यह व्यवस्था आजादी के बाद भी जारी रही।

1976 में राज्य सरकार ने भारतीय वन अधिनियम, 1927 की धारा 28 के तहत वन पंचायत के लिए नए नियम जारी किये। नए नियमों के तहत वन पंचायतों की स्वायत्तता ख़त्म कर उन्हें ग्राम वन के रूप में अधिसूचित किया गया। नियमों में इस बदलाव ने राज्य के वन विभाग को पंचायती वनों के प्रबंधन हेतु नियम और शर्तें निर्धारित करने का अधिकार दिया। इसका अर्थ यह हुआ कि वन पंचायतों के वनों के नियोजन, प्रबंधन और संरक्षण से संबंधित सभी शक्तियाँ राज्य वन विभाग ने अपने हाथ में ले लीं।

2001 और 2005 में फिर से इन नियमों में संशोधन हुए। हाल में हुए इन संसोधनों ने स्थानीय ग्रामीणों के वन प्रबंधन, संरक्षण और वन से प्राप्त लाभों के वितरण एवं लोगो की वन उत्पादों और सेवाओं तक पहुंचने की शक्ति को और कम कर दिया।1931 के नियमों के पीछे की अवधारणा थी कि लोगो के परम्परागत हक़ - हकूक को जारी रखते हुए ही हक़ धारियों को ही वन सरक्षण की जिम्मेदारी सौंपी जाय। हालाँकि आज के नियम के पीछे की अवधारणा इसके ठीक विपरीत है, जिसमें सिर्फ वन विभाग पर ही भरोसा जताया गया है। यह तब है जब वन विभाग के पास न तो पर्याप्त कार्यबल है और न ही वन पंचायत उनकी प्राथमिकता। इन नियमों मूल में हक़ - हकूकों में कटौती कर लोगों की जंगलों पर निर्भरता कम करना है।

वन पंचायतों की शुरुआत 1931 में जिला अनुसूचित अधिनियम के तहत की गई थी। हालांकि, 1976 में वन पंचायत नियम, भारतीय वन अधिनियम, 1927 की धारा 28 के तहत जारी किए गए थे। अधिनियम की यह धारा पूरी तरह से राज्य वन विभाग द्वारा नियंत्रित ग्राम वन के निर्माण की व्यवस्था प्रदान करती है।

[1] KumaunPnachyati Forest Rules, 1931: http://www.himalprakriti.org/Our_Content_Files/VanPanchayats/Kumaon%20Panchayat%20Forest%20Rules%201931%20small.pdf

भारतीय वन अधिनियम की धारा 28- ग्राम वन का गठन

अध्याय 3

ग्राम वनों (Village Forest) के सम्बन्ध में

धारा 28. ग्राम वनों का निर्माण - (1) राज्य सरकार किसी ऐसी भूमि के प्रति या उस पर, जो आरक्षित वन (Reserved Forest) कर दी गई है किसी ग्राम समुदाय को शासन के अधिकार समनुदेशित कर सकेगी और समनुदेशन (Assignment) रद्द कर सकेगी। इस प्रकार समनुदेशित वन "ग्राम वन" कहलावेंगे।

(2) जिस ग्राम समुदाय (Village Community) को ऐसा समनुदेशन किया गया है, उस ग्राम समुदाय के लिये इमारती लकड़ी, या अन्य वन उपज या चराई का उपबन्ध जिन शर्तों के अधीन किया जा सकेगा, उन्हें ऐसे वन के संरक्षण एवं सुधार के लिये, उनके कर्त्तव्यों को विहित करने वाले नियम राज्य सरकार ग्राम वनों के प्रबन्ध को विनियमित करने के लिये बना सकेगी।

(3) इस अधिनियम के वे सब उपबन्ध, जो आरक्षित वनों से सम्बद्ध है, वहाँ तक (जहाँ तक कि वे इस प्रकार बनाये नियमों से असंगत नहीं है) ग्राम वनों को लागू होंगे।

भारतीय वन अधिनियम, 1927 की धारा 28 की उपधारा 2 में आरक्षित वन पर ग्राम वन के गठन का प्रावधान है। इसके तहत राज्य वन विभाग को इन ग्राम वनों के प्रबंधन के लिए नियम जारी करने का अधिकार है। विभाग के पास इस प्रावधान के तहत समुदाय को दिए गए अधिकारों और सुविधाओं को रद्द करने की शक्ति भी है।

वन पंचायतों को 1931 में प्राप्त वन प्रबंधन एवं वन उपज के वितरण की स्वायत्तता को 1976 में जारी की गयी नियमावली ने पूरी तरह से छीन लिया है। सन 1976 में वन पंचायतो का जिला अनुसूचित अधिनियम से भारतीय वन अधिनियम, 1927 में प्रवासन ने इन पंचायतों के लिए यहाँ के लोगों के पूर्वजों के ऐतिहासिक संघर्ष को अनदेखा किया और इन पंचायतों के बुनियादी उदेश्यों को कमजोर कर दिया। इसके अलावा, वन पंचायतों को ग्राम वन में तब्दील करने की इस प्रक्रिया में राज्य वन विभाग ने भारत वन अधिनियम की धारा 28 का गैर वाजिब उपयोग भी किया। हमें यह याद रखना चाहिए कि वन पंचायतों का गठन राजस्व वन पर किया गया था, जबकि राज्य वन विभाग भारतीय वन अधिनियम की धारा 28 के तहत कानूनी रूप से सिर्फ आरक्षित वनों पर ही ग्राम वन बना सकता है।

उत्तराखंड राज्य के वन विभाग द्वारा 2019 में प्रकाशित वन सांख्यिकी के अनुसार वन पंचायत के नियंत्रण में कुल 7350.85 वर्ग किमी वन क्षेत्र है। इसमें से केवल 139.65 वर्ग किमी वन क्षेत्र ही आरक्षित वन है। वन पंचायत के अधीन सिविल और सोयम (राजस्व) वन का हिस्सा 4961.851 वर्ग किलोमीटर है। 1 39.65 वर्ग किमी वन क्षेत्र में गठित वन पंचायतों के प्रबंधन एवं उपयोग हेतु भारतीय वन अधिनियम के तहत जारी नए वन पंचायत नियमों को समझा जा सकता है लेकिन राजस्व वन भूमि पर गठित हजारों वन पंचायतों में इन नियमो का प्रसार भारतीय वन अधिनियम के अधिकार क्षेत्र से परे है और साथ ही वन अधिकार अधिनियम, 2006 के प्रावधानों का भी उल्लंघन करता है।

वन पंचायतों के प्रबंधन नियंत्रण के अंतर्गत वन का प्रकार	
सिविल और सोयाम वन	4,961.851 वर्ग किमी
वन पंचायतों में पूर्ण रूप से दर्ज हैं आरक्षित वन	2,248.34 वर्ग किमी
आरक्षित वन	139.65 वर्ग किमी
कुल वन (कुल वन का 13.41%)	7350.85 वर्ग किमी

3- पुराने, वर्तमान और प्रस्तावित प्रणाली के तहत वन अधिकार

लेख के इस खंड और अगले दो खंडों में हम उत्तराखंड में वन अधिकारों की पुरानी, वर्तमान तथा प्रस्तावित प्रणाली के गुण -दोषों की विवेचना करेंगे। पुरानी सामुदायिक वन प्रबंधन की प्रणाली वह है जो स्थानीय लोगो को वन पंचायत नियमावली, 1931 द्वारा प्रदत्त थीं। वर्तमान प्रणाली वह है जो भारतीय वन अधिनियम, 1927 के तहत जारी पंचायती वन नियमावली, 2005 के जरिये पंचायती वनों के प्रबंधन एवं उपयोग की व्यवस्था प्रदान करती है[2]। हमारा प्रस्ताव है कि वन पंचायतो को उत्तराखंड में वन अधिकार कानून के तहत सामुदायिक वन भूमि के प्रबंधन एवं विकास हेतु एक संस्थागत वय्वस्था के रूप में अपनाया जाय। इस लेख में हम इसे प्रस्तावित प्रणाली कह रहे हैं।

वन पंचायत नियम, 1931 वनों में रहने वाले पर्वतीय समुदायों के अधिकारों और सुविधाओं को मान्यता देने के संदर्भ में एक खुला दिशानिर्देश था। यह नियमावली ग्रामीण हक़ धारियों को पंचायती वन की सीमा का सीमांकन करने और आश्रित लोगों के अधिकारों की सूची तय करने के लिए अधिकृत करता था। हक़ धारीयों के बताये अनुसार ही जिले के उपायुक्त की जिम्मेदारी थी कि वे वन पंचायत गठन के समय सरकार और हक़ धारियों के बीच अंतिम समझौते में उन अधिकारों तथा वन सीमा को उपयुक्त तरीके से लिखे। वनों की स्थिति, उससे प्राप्त होने वाली वन उपज तथा लोगों की वनों पर निर्भरता गांव दर गांव बदलती है। हर गांव की इन विशिष्ट स्थानीय आवश्यकताओं को ही ध्यान में रखते हुए पंचायती वन नियमावली को इतना खुला रखा गया था।

वर्ष 1976, 2001 और 2005 में वन पंचायत नियमों में हुए क्रमिक संशोधनों ने वन पंचायतों से वन सीमा का सीमांकन करने और लोगों के हक़- हकूक निर्धारित करने की शक्ति को वापस ले लिया है। वर्तमान वन पंचायत नियम ग्रामीणों के पारंपरिक वन अधिकारों जैसे ईंधन, चारा और चराई को मान्यता तो देते हैं, लेकिन हक़धारी वन विभाग द्वारा अनुमोदित सूक्ष्म योजना के अनुसार ही उनका प्रयोग कर सकते हैं । इसका अर्थ है कि ग्रामीण समुदाय को वन विभाग की प्राथमिकता के अनुसार अपने पारंपरिक वन अधिकारों और सहूलियतों को समायोजित है।

इसके अलावा वर्तमान पंचायती वन नियमावली ने ग्राम उद्योग से संबंधित हक़ धारियों के पारंपरिक अधिकार और वाणिज्यिक लाभ प्राप्त करने की राह को और मुश्किल कर दिया गया है। मौजूदा

[2] Uttarakhand Panchayati Forest Rules, 2005: https://forest.uk.gov.in/files/Van_Panchayat/VP_rules2005_english_wit_gazette.pdf

नियमों के तहत वन पंचायत वन विभाग की अनुमति के बिना लघु वनोपज का संग्रहण और बिक्री नहीं कर सकती है। वन पंचायत की सूक्ष्म योजना के अनुसार पारिस्थितिक आवश्यकताओं को पूरा करने पर ही वन अधिकारी लघु वनोपज के दोहन की अनुमति दे सकता है। प्रभावी रूप से वर्तमान वन पंचायत नियम, 1931 में वन पंचायतों में निहित सभी अधिकारों और सहूलियतों को छीन लेता है।

1931 के वन पंचायत नियमों में ग्रामीणों को दिए गए अधिकारों और रियायतों को निर्दिष्ट नहीं किया गया था। उस नियमावली ने ग्रामीणों को उनकी परंपराओं और व्यावसायिक आवश्यकताओं के आधार पर अपने वन अधिकारों और रियायतों को निर्धारित करने के लिए पूर्ण स्वायत्तता प्रदान की थीं । वहीं दूसरी ओर वन अधिकार अधिनियम, काफी अधिक विस्तृत और व्यापक कानून है जो प्रत्येक व्यक्तिगत और सामुदायिक हक़ धारियों की पात्रता और देय वन अधिकार/रियायत को बारीकी से स्पष्ट करता है । बाबजूद इसके ये दोनों कानूनी दस्तावेज वनों पर लोगों की सहजीवी निर्भरता और वन प्रबंधन की उनकी क्षमता का सम्मान करते हैं। चूँकि हक़ धारियों के हक़ हकूक वन पंचायत व्यवस्था के तहत स्पष्ट अंकित हैं और लोगों ने दशकों तक औपचारिक रूप से उनका लाभ भी उठाया है, इसलिए पंचायती वन नियमावली 1931 और उसके बाद गठित वन पंचायतो को दिए गए अधिकारों को वन अधिकार अधिनियम, 2006 की धारा -3 की विभिन्न उप-धाराओं के तहत मान्यता दी जानी चाहिए ताकि हक़-हकूकों को कानूनी सरक्षण मिल सके।

यह इसलिए भी जरूरी हे क्योंकि 1976 में वैधानिक शून्यता के कारण वन पंचायतो को भारतीय वन अधिनियम के तहत ग्राम वन के रूप में परिवर्तित किया गया। 1976 मैं हुए इस बदलाव ने हक़ धारियों के कई अधिकारों और अधिकारों को कम कर दिया है। साथ ही पंचायती वनों के प्रबंधन का नियंत्रण वन विभाग को स्थानांतरित हो गया है। वर्ष 2006 में वन अधिकार कानून के लागू हो जाने के बाद यह कानूनी शून्यता समाप्त हो गयी है, इसलिए वन पंचायतों को नए और मुफीद कानून के तहत अधिसूचित किया जाना चाहिए।

पुरानी, वर्तमान और प्रस्तावित पंचायती वन प्रबंधन के तहत निहित वन अधिकार और रियायतें			
	वन पंचायत नियम, 1931 (पुरानी व्यवस्था)	**वन पंचायत नियम, 2005 (वर्तमान व्यवस्था)**	**वन अधिकार अधिनियम, 2006 (प्रस्तावित व्यवस्था)**
अवधारणा	वन पंचायत गठन के पीछे की अवधारणा यह थी कि वन प्रबंधन की पारंपरिक प्रणाली को मान्यता देना और उन्हें संस्थागत स्वरुप देकर	**नियम 12** पंचायती वनों की सुरक्षा हेतु वन पंचायतों को वन विभाग की पुरानी वन प्रबंधन व्यवस्था के अधीन लाना ही वर्तमान वन	**3(1) (i)** हक़ धारियों को उनके अपने पारम्परिक वन की सुरक्षा, पुनरुत्पादन, संरक्षण तथा प्रबंधन का अधिकार वन अधिकार कानून देता

	औपचारिक बनाना था।	पंचायत नियमावली का उद्देश्य है। वन पंचायतो को वन विभाग द्वारी जारी समग्र योजना के अनुरूप ही अपने पंचायती वन लिए योजना विकसित करना अनिवार्य है।	है। जिसमे वन विभाग का कोई हस्तक्षेप नहीं है।
बुनियादी अधिकार	**नियम 5:** हक़ धारी ग्रामीणों को अधिकार था कि वे जिला उपायुक्त को एक सादा आवेदन देकर वन पंचायत के गठन की आवश्यकता और उद्देश्य को तय कर सकते थे। हक़ धारियों को ही ग्रामीणों के वन अधिकार तय करने का अधिकार था।	**नियम 18 (बी)** सभी प्रथागत वन अधिकार जैसे कि ईंधन, चारा, पेड़ काटना आदि वन विभाग द्वारा अनुमोदित सूक्ष्म योजना के माध्यम से नियंत्रित होंगे।	**सेक्शन 3(1) (बी)** हक़ धारियों को सामुदायिक वन अधिकार जैसे निस्तार वह चाहे किसी भी नाम से पुकारा जाता रहा हो को पूर्व की भांति ही उपयोग करने का अधिकार देता है।
वाणिज्यिक अधिकार	**नियम 12 (सी)** वन पंचायत लीसा के अतिरिक्त सभी वन उत्पाद जैसे स्लेट, पत्थर, टिम्बर इतियादी एकत्रित करने और बेचने की हकदार थी	**नियम 18(ए)** जब तक वन विभाग द्वारा तय माइक्रो प्लान के आधार पर क्षेत्र की पारिस्थितिक आवश्यकता पूरी नहीं होती है, तब तक हक़ धारी किसी भी वन उत्पाद को जंगल से नहीं निकल सकते है। नियम 18 (डी) पारिस्थितकीय आवश्यकता पूरा होने के बाद भी हक़ धारी वन विभाग के अनुमोदन के बिना वन पंचायत को किसी भी वनोपज के स्वामित्व, संग्रहण और बिक्री का अधिकार नहीं है।	**सेक्शन 3(1) (सी)** हक़ धारियों को उनके जंगल से प्राप्त लघु वन उपज के संग्रहण, उपयोग, बिक्री और निपटान का पूर्ण अधिकार है।

खानाबदोशों, चरवाहों और पीवीटीजी के अधिकार	**नियम 5:** हक़ धारी ग्रामीण अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप अपने वन अधिकार निर्धारित करने के लिए स्वतंत्र थे।	ऐसे समुदायों के लिए कोई प्रावधान नहीं	**सेक्शन 3(1) (डी)** घुमन्तु या PVTG समुदाय के अस्थायी निवास व वनों पर निर्भरता के पारम्परिक अधिकार को मान्यता देता है।
बौद्धिक संपदा और पारंपरिक ज्ञान का अधिकार	**नियम 5:** ग्रामीण जंगल से अपनी आवश्यकताओं को निर्दिष्ट करने के लिए स्वतंत्र थे	जैव विविधता और बौद्धिक संपदा और पारंपरिक ज्ञान के उपयोग और सुरक्षा का कोई प्राविधान नहीं है।	**सेक्शन 3(1) (के)** वन अधिकार कानून हक़ धारियों को उनके पारम्परिक जैव विविधता से सम्बन्धी बौद्धिक ज्ञान के उपयोग एवं सरक्षण का अधिकार देता है।

4- पुराने, वर्तमान और प्रस्तावित प्रणालियों के तहत ग्राम वनों का प्रशासन

जब ब्रिटिश सरकार ने 18 वीं शताब्दी में वन विभाग का गठन किया था, उसी समय से वन संसाधनों का प्रशासन और नियंत्रण एक विवादास्पद मुद्दा है । भारत ने ब्रिटिश राज के दौरान वन संसाधनों के स्वामित्व और शासन के मुद्दों पर सैकड़ों स्थानीय संघर्ष देखे हैं। 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में उत्तराखंड में जन विद्रोह उनमें से एक था। हालांकि आजादी के बाद भी यह मुद्दा विवादों में रहा।

प्रभाकर और सोमनाथन (1998) द्वारा किए गए एक अध्ययन में पाया गया कि वन विभाग के नियंत्रण वाले वन की तुलना में उत्तराखंड के पंचायती जंगल में बांज प्रजाति के जंगल का घनत्व 15.6 प्रतिशत अधिक है। हालांकि चीड़ के पेड़ का घनत्व पंचायती जंगलों में कम था[3]। बांज के जंगल उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में न सिर्फ पारिस्थितिक रूप से फायदेमंद और महत्वपूर्ण है बल्कि यहाँ की ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए भी लाभकारी है। उत्तराखंड में वन पंचायतों पर और अधिक समकालीन अध्ययनों में पाया गया कि इन पंचायतों पर वन विभाग द्वारा नियमों को लागू करने से उनके नियंत्रण वाले वनों की रक्षा और प्रबंधन करने की उनकी क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा (बालूनी एट अल, 2007, नागहामा, 2016)। ई. सोमनाथन (1991) द्वारा उत्तराखंड क्षेत्र में वनों की कटाई पर एक अन्य अध्ययन में तर्क दिया गया कि इस क्षेत्र में लोगों के पारंपरिक वन अधिकारों को सुनिश्चित करके वन पारिस्थितिकी के क्षरण को प्रभावी ढंग से नियंत्रित किया जा सकता है।

पहले वन पंचायत योजना, सामुदायिक अधिकारों को विनियमित करने, उपयोगकर्ता शुल्क तय करने, उल्लंघन पर जुर्माना, उप-नियम तैयार करने, आवश्यक मानव संसाधन नियुक्त करने, लघु वन उपज की निकासी (लीसा को छोड़कर) के प्रबंधन, बिक्री और निपटान तथा वन पंचायत की आय के उपयोग

[3] http://citeseerx.ist.psu.edu/viewdoc/download?doi=10.1.1.461.1567&rep=rep1&type=pdf

को लेकर पूर्णत्या स्वायत्त थी। 1976 से पहले, वन पंचायतें, नॉवेल प्राइज़ से सम्मानित एलिनोरो स्ट्रॉम के सी.पी.आर. के प्रबंधन के आठ सिद्धांतों के अनुसार सामुदायिक संपत्ति संसाधनों (सीपीआर) के शासन की आदर्श प्रणाली थीं[4]। उन सिद्धांतों में सबसे महत्वपूर्ण समुदाय के सदस्यों को नियम बनाने की शक्ति और बाहरी अधिकारियों द्वारा ऐसे नियमों की स्वीकृति है।

अग्रवाल (1995) ने अपने अध्ययन में पाया कि वन पंचायतों को रोजमर्रा के कार्यों के लिए नियम तय करने के अधिकार से बंचित रखने से राज्य के कुमाऊं क्षेत्र में इन पंचयायतों के प्रदर्शन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। लैटिन अमेरिका और कैरिबियन के वन प्रशासन के आंकड़ों के आधार पर एफएओ और एफआईएलएसी द्वारा प्रकाशित एक हालिया अध्ययन रिपोर्ट में भी पाया गया कि सरकारी एजेंसियों के नियंत्रण वाले जंगल की तुलना में स्थानीय लोगों के नियंत्रण वाले जंगल अधिक संरक्षित हैं[5]।

जहां 1976 से पूर्व वन पंचायत नियमावली विश्व स्तर पर सामुदायिक संसाधनों के प्रबंधन के स्वीकृत सिद्धांतों के अनुरूप थी, वहीं सन 1976, 2001 और 2005 में वन पंचायत नियमों में हुए संशोधनों ने उन सिद्धांतों की अनदेखी की। वर्तमान नियम वन पंचायतों को स्वयं की योजना और उप-योजना तैयार करने की अनुमति नहीं देते हैं। दरअसल,वन विभाग द्वारा वन पंचायतों के प्रबंधन की योजना तय करने के बाद भी, उनके दैनिक निर्णयों व कार्यों को वन अधिकारियों द्वारा अनुमोदित करने की आवश्यकता होती है।

वन विभाग वन पंचायत के लिए समग्र योजना विकसित करता है और इस योजना के आधार पर वन पंचायतों को स्थानीय वन अधिकारियों के परामर्श से अपनी सूक्ष्म योजना और वार्षिक कार्य योजना तैयार करनी होती है। वन उत्पादों का संग्रह और निष्पादन वन अधिकारियों द्वारा अत्यधिक विनियमित और नियंत्रित किया गया है। इतना ही नहीं वन रक्षक वन पंचायत प्रबंधन समिति के पदेन सदस्य सचिव हैं। वन पंचायतों से इस तरह के प्रतिबंधों के बीच वनों की रक्षा और वन संसाधनों का न्यायोचित वितरण एवं प्रबंधन की अपेक्षा करना अवास्तविक है।

नए नियमों के तहत वन पंचायत को वन के संरक्षण और प्रबंधन के बारे में निर्णय लेने की कोई शक्ति नहीं है। हर निर्णय के लिए वन अधिकारी की मंजूरी की आवश्यकता होती है। यह प्रणाली वनवासियों को वनों के संरक्षण के लिए अपने पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान का उपयोग करने के लिए भी हतोत्साहित करती है। हालाँकि, वन अधिकार अधिनियम, 2006 एक ऐसी प्रणाली प्रदान करता है जहाँ एक समूह के रूप में हक़ हकूक धारक वन संसाधनों की प्लानिंग और प्रबंधन को नियंत्रित कर सकते हैं।

वन अधिकार अधिनियम के तहत मान्यता प्राप्त सामुदायिक वन अधिकारों का प्रबंधन ग्राम सभा द्वारा गठित एक समिति द्वारा किया जाता है। यह समिति पंचायती राज अधिनियम के तहत वन

[4] https://www.onthecommons.org/magazine/elinor-ostroms-8-principles-managing-commmons

[5] Chako S., 2021, Forests under Indigenous People more protected, says new report', Down to Earth, 30 March 2021, Available from:https://www.downtoearth.org.in/news/environment/forests-under-indigenous-people-more-protected-says-new-report-76193

प्रबंधन हेतु एक स्वायत्त समिति है, जिसमें वन विभाग या राजस्व विभाग का कोई हस्तक्षेप नहीं है। समिति को अपने अधिकार प्राप्त वन क्षेत्र के सरक्षण, संवर्धन, विकास के साथ साथ वन उपज के संग्रह, निष्पादन और वितरण का पूर्ण अधिकार है। वर्तमान वन पंचायत नियमावली तथा प्रस्तावित वन अधिकार अधिनियम द्वारा प्रदत्त शासन व्यवस्था एक दूसरे के सर्वथा विपरीत है। यदि हम वन प्रबंधन में समुदाय की भागीदारी को प्रोत्साहित करना चाहते हैं, तो वन अधिकार अधिनियम के प्रावधान एक बेहतर और कारगर वयवस्था प्रदान करते हैं।

पुराने, वर्तमान और प्रस्तावित प्रणालियों के तहत ग्राम वनों का प्रशासन			
	वन पंचायत नियम, 1931 (पुरानी व्यवस्था)	**वन पंचायत नियम, 2005 (वर्तमान व्यवस्था)**	**वन अधिकार अधिनियम, 2006 (प्रस्तावित व्यवस्था)**
जिम्मेदार एजेंसी	वन पंचायत के पास वन उत्पादों से सम्बंधित हक़ धारियों के अधिकारों और रियायतों को विनियमित करने की शक्ति थी	**नियम 13:** वन विभाग के निर्देश पर वन पंचायत समिति हक़ धारियों के वन अधिकार एवं रियायतों के नियमन की सुविधा प्रदान करती है।	**नियम 4 (1) (ई)** वन अधिकार अधिनियम के तहत ग्राम पंचायत द्वारा गठित एक समिति के पास वन अधिकारों के विनियमन, संरक्षण और वन उपज निकालने सहित वन के प्रबंधन की जिम्मेदारी है।
प्रबंधन योजना:	**नियम 8** वन पंचायतों के के अंतर्गत हक़ धारियों के अधिकार और रियायतों को वन पंचायत स्थानीय लोगो की जरूरतों और वनों की स्थिति के अनुसार तय करती थीं। पंचायत के गठन के बाद उन अधिकारों और रियायतों को सूचीबद्ध कर जिला उपायुक्त एक अनुबंध तैयार करता था, जिसे वन पंचायत सरपंच हस्ताक्षर कर स्वीकार करता था।	**नियम-12:** वन पंचायतों के प्रबंधन हेतु सूक्ष्म योजना तैयार की जाती है। वन पंचायत के लिए विकसित सूक्ष्म योजना वन विभाग की समग्र योजना के आधार पर तैयार की जाती है। सूक्ष्म योजना को भी वन विभाग द्वारा अनुमोदित करने पर ही अमल में लाया जाता है।	**नियम 4 (1) (एफ):** ग्राम सभा द्वारा गठित समिति को सामूहिक वन के संरक्षण और प्रबंधन की योजना तैयार करने की शक्ति है।

वन विभाग की कार्य योजना के साथ एकीकरण:	वन विभाग की प्रबंधन योजना के साथ वन पंचायतों के प्रबंधन की योजना के एकीकरण का कोई कोई प्रावधान नहीं था। यहाँ तक कि वन पंचायत के प्रबंधन एवं प्रशाशन में वन विभाग का कोई हस्तक्षेप नहीं था।	**नियम 11, 12, 13.** वन पंचायत वन विभाग की समग्र योजना के प्रावधानों से परे कुछ भी योजना नहीं बना सकती है। यदि वन पंचायत को कोई उपयोजना बनानी हो या निर्णय लेना हो तो उसे वन विभाग की अनुमति जरूरी है।	**नियम 4 (1) (एफ):** हक़ धारियों के सामूहिक वन की कार्ययोजना को अंतिम रूप देते समय समिति सब डिवीज़न स्तरीय समिति से सुझाव मांगेगी। हालाँकि, ये सुझाव ग्राम सभा के लिए बाध्यकारी नहीं हैं। यहाँ समिति द्वारा तय योजना को वन विभाग को अपने कार्य/प्रबंधन योजना में एकीकृत करना है।

5- पुराने, वर्तमान और प्रस्तावित प्रणालियों के तहत सामुदायिक वनों का उपयोग

उत्तराखंड में सकल राज्य घरेलू उत्पाद (जी.एस.डी.पी.) में प्राथमिक क्षेत्र का योगदान लगभग 11% है। इस क्षेत्र में कृषि, डेयरी, मछली पकड़ने और वानिकी जैसे व्यवसाय शामिल हैं। यदि राज्य के पर्वतीय जिलों की बात करें तो यहाँ के लोग अपनी आजीविका के लिए प्राथमिक क्षेत्र पर बहुत अधिक निर्भर हैं। पर्वतीय जिलों में घरेलू उत्पाद में प्राथमिक क्षेत्र का योगदान पौड़ी गढ़वाल में 16% से लेकर उत्तरकाशी जिले में 31% तक है (पलायन आयोग, 2018)।

सामाजिक-आर्थिक और जाति जनगणना (एस.ई.सी.सी.), 2011 के आंकड़े बताते हैं कि पर्वतीय जिलों के लगभग 50% लोग कृषि, वानिकी और डेयरी जैसे व्यवसायों पर निर्भर थे[6]। राज्य पलायन आयोग द्वारा 2018 में किए गए एक नमूना सर्वेक्षण से पता चलता है कि आजीविका के पैटर्न में बहुत कुछ नहीं बदला है। इसमें पाया गया कि उत्तराखंड की लगभग 46% आबादी प्राथमिक क्षेत्र के व्यवसायों पर निर्भर है। राज्य के कई पर्वतीय जिलों के लिए प्राथमिक क्षेत्र के व्यवसायों पर यह निर्भरता उनकी कुल जनसंख्या के 50% से अधिक है (पलायन आयोग, 2018)। पर्वतीय जिलों में वन और वन उत्पादों के बिना इन व्यवसायों की कल्पना नहीं की जा सकती है।

1998 में सामुदायिक संपत्ति संसाधनों के उपयोग पर एन.एस.एस.ओ. की रिपोर्ट में पाया गया था कि उत्तर प्रदेश के पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र (वर्तमान में उत्तराखंड का पर्वतीय क्षेत्र) के 55% परिवारों ने मवेशी चराई के लिए सामुदायिक जंगल पर निर्भर थे। रिपोर्ट में इस क्षेत्र के लोगों की चारे, ईंधन, छप्पर सामग्री और पशुओं के बिस्तर आदि के लिए जंगल पर अत्यधिक निर्भरता पाई गई। यह दो दशक से अधिक पुराना डेटा है, लेकिन निश्चित रूप से, वन पर लोगों की निर्भरता में कोई खास

[6] https://secc.gov.in/statewiseMainSourceOfIncomeReport?reportType=Main%20Source%20Of%20Income

बदलाव नहीं आया है क्योंकि जनगणना और अन्य रिपोर्ट (ऊपर उल्लिखित) से पता चलता है कि अभी भी 50% से अधिक लोग वन आधारित व्यवसायों जैसे कृषि, पशुधन और डेयरी पर निर्भर हैं ।

वन पंचायत नियम 1931 ने क्षेत्र की स्थानीय अर्थव्यवस्था में वन एवं वन उत्पादों की अहम् भूमिका को मान्यता दी। हालांकि वन पंचायतों के मौजूदा नियम वन और वनवासी पर्वतीय समुदायों के बीच इस बुनियादी पुल की अनदेखी करते हैं। ये नियम अधिकार धारकों के अधिकारों को कम करके जंगल की रक्षा करने का प्रयास करते हैं। वन के साथ लोगों के सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक संबंधों को नज़रअंदाज करना या त्यागना असल में वास्तविकता को अनदेखा करना है। यदि सरकार चाहती है कि समुदाय वन संरक्षण में भाग ले, तो उसे वनों के साथ उनके संबंधों का भी सम्मान करना होगा और उन्हें मान्यता देनी होगी।

वन पंचायत नियम, 2005 ने राज्य के पर्वतीय क्षेत्र में स्थानीय अर्थव्यवस्था के आधार की अनदेखी की। वन पंचायत नियमों का प्राथमिक उद्देश्य वनवासियों के अधिकारों में कटौती करके वनों की रक्षा करना है। यही कारण है की वर्तमान नियमावली में समुदाय के पारंपरिक अधिकार जैसे ईंधन, चारा और चराई, वन पंचायत के लिए दूसरे नंबर की प्राथमिकता बन गए। इसके अलावा, ये नियम कुटीर उद्योगों और स्थानीय उपयोग के लिए लघु वन उत्पादों के निकासी को हतोत्साहित करते हैं। यदि कोई वन पंचायत वाणिज्यिक उद्देश्य के लिए वन उत्पादों को निकालने का प्रबंधन करती भी है, तो पंचायत की ऐसी आय को वन विभाग द्वारा सख्ती से नियंत्रित किया जाता है। ये नियम न केवल लोगों को उनके पारंपरिक वन अधिकारों तक पहुँचने से रोकते हैं बल्कि पर्वतीय कुटीर उद्योगों के विकास और प्रगति में भी बाधा उत्पन्न करते हैं।

वनवासियों के पारंपरिक अधिकारों पर प्रतिबंध और सामुदायिक वन के प्रबंधन में वन विभाग का हस्तक्षेप वन अधिकार अधिनियम, 2006 के प्रावधानों के खिलाफ है। अधिनियम न केवल सामुदायिक निस्तार अधिकारों को मान्यता देता है बल्कि वन उपज को इकट्ठा करने और निपटाने के लिए समुदाय को पूर्ण स्वायत्तता भी देता है। कानून के अनुसार, कोई भी एजेंसी समुदाय द्वारा लघु वन उत्पादों की बिक्री और मूल्यवर्धन से होने वाली समुदाय की आय को नियंत्रित या विनियमित नहीं कर सकती है। इसके अलावा यह अधिनियम राज्य सरकार के लिए यह अनिवार्य कर देते हैं कि समुदाय द्वारा लघु वन उपज के परिवहन और बिक्री को पारगमन नियमों और रॉयल्टी कानूनों से बाहर रखे ।

लघु वनोपज की निकासी और निपटान		
वन पंचायत नियम, 1931 (पुरानी व्यवस्था)	**वन पंचायत नियम, 2005 (वर्तमान व्यवस्था)**	**वन अधिकार अधिनियम, 2006 (प्रस्तावित व्यवस्था)**
नियम 12 (सी) वन पंचायत लीसा को छोड़कर स्लेट व स्टोन सहित सभी वन उत्पाद बेचने की हकदार थी	**नियम 18 (डी)** वन पंचायत वन विभाग की अनुमति के बिना किसी भी प्रकार के वनोपज को नहीं बेच सकती है।	**नियम 2 (1) (डी)** वन अधिकार अधिनियम, 2006 धारा 3 की उप-धारा (1) के खंड (सी) के तहत वन हक़ धारियों की समिति, संघ या कोई अन्य

नियम 12 (सी) (1) लीसा की निकासी एवं बिक्री अधिकार वन विभाग के पास सुरक्षित था।		संगठन को लघु वन उपज को बेचने की अनुमति देता है। इसके अलावा यह अधिनियम व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से लघु वन उपज के संग्रहण, प्रसंस्करण, भंडारण, मूल्यवर्धन, परिवहन आदि का भी अधिकार देता है।
लघु वन उत्पाद से आय का प्रबंधन		
वन पंचायत नियम, 1931 (पुरानी व्यवस्था)	**वन पंचायत नियम, 2005 (वर्तमान व्यवस्था)**	**वन अधिकार अधिनियम, 2006 (प्रस्तावित व्यवस्था)**
नियम 12 (सी) (1) वन पंचायत जंगलों से लीसा की बिक्री से होने आय को वन पंचायत और वन विभाग आपस में बांटते थे। **नियम 18:** लीसा के अतिरिक्त अन्य सभी वन उपज की बिक्री से प्राप्त आय वन पंचायत कोष में जमा की जाती थी, सरपंच की देख-रेख में होता था। इस आय का उपयोग मुख्य रूप से वन के संरक्षण के लिए जाता था।	**नियम 30 (1) (बी):** वन विभाग वन पंचायतों द्वारा विक्रित वन उपज से प्राप्त आय राशि का 10% प्रशासनिक लागत के रूप में वन पंचायत से वसूल करता है। **नियम 30 (1) (ए):** वन पंचायत के जंगलों से लीसा की निकासी के मामले में वन विभाग वन पंचायतों से वास्तविक लागत और ओवरहेड का खर्च लेता है। **नियम 30 (2)** वन पंचायत की आय को निम्नानुसार खर्च करने का प्राविधान है: ग्राम सभा को 30%, वन संरक्षण के लिए 40% और सामान्य उपयोगिता की परियोजनाओं के लिए 30%।	**नियम 4 (1) (छ)** सामुदायिक वन के प्रबंधन और संरक्षण के लिए ग्राम सभा द्वारा गठित समिति लघु वनोपज की बिक्री से होने वाली किसी भी आय का एकमात्र मालिक है। समिति को आय के खर्च को निर्धारित करने का पूर्ण अधिकार है।

6- पर्वतीय आजीविका की समृद्धि में पंचायती वनों की भूमिका

उत्तराखंड के पर्वतीय जिले में लोग पीढ़ियों से अपने जीवन और आजीविका के लिए वन और वन उत्पादों का उपयोग करते आ रहे हैं। 1931 में जारी वन पंचायत नियम ने इस क्षेत्र लोगों के ऐसे ही परम्परागत वन अधिकारों को विनियमित और संस्थागत बनाने का एक प्रयास किया था। हालाँकि, इस प्रणाली में हुए क्रमिक संशोधनों ने न केवल पर्वतीय समुदाय के अधिकारों में कटौती की बल्कि वनों पर शासन करने के उनके अधिकार को भी कम कर दिया। वन पंचायतों के माध्यम से वनवासी समुदायों को वन प्रबंधन अधिकारों और आर्थिक लाभ से वंचित करना, वह भी तब जब पुरे देश में वन अधिकार अधिनियम, 2006 लागु है, समुदाय के नेतृत्व वाले वन संरक्षण के विचार के खिलाफ है। यह प्रगतिशील कानून समुदाय को अपने नियंत्रण वाले वनों की रक्षा और संरक्षण के लिए प्रोत्साहित करता है।

उत्तराखंड के पर्वतीय जिलों से रोजगार के लिए पलायन एक गंभीर जनसांख्यिकीय और विकासात्मक मुद्दा है। पहाड़ों में आजीविका के विकल्पों की कमी और बुनियादी ढांचे की कमी इस संकटपूर्ण पलायन के प्रमुख कारक हैं। राज्य पलायनआयोग द्वारा वर्ष 2018 में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार, इन जिलों से पिछले दस वर्षों में 11.12% (स्थायी रूप से 8.3% और मौसमी रूप से 3.8%) आबादी पलायन कर चुकी है। सर्वेक्षण में यह भी पाया गया कि 2011 से 2018 तक उत्तराखंड से पलायन के कारण 734 गांव जनसख्या विहीन हो गए है।

राज्य पलायन आयोग के अनुमान के अनुसार लगभग आधी पर्वतीय आबादी आजीविका के विकल्प के अभाव में संकट में है। पारंपरिक आजीविका प्रणाली (मुख्य रूप से कृषि और पशुधन) में गिरावट और द्वितीयक और तृतीयक स्तर के उद्यमों की नगण्य वृद्धि ने पिछले कुछ दशकों में आजीविका के संकट को बढ़ा दिया है। कृषि और पशुधन से संबंधित व्यवसायों की गिरावट भूमि उपयोग के आंकड़ों और पशुपालन के आंकड़ों से स्पष्ट है।

केंद्रीय कृषि मंत्रालय की वेबसाइट पर उपलब्ध भूमि उपयोग के आंकड़े के अनुसार राज्य के पर्वतीय जिलों में परती भूमि 2010-11 में 0.88 लाख हेक्टेयर से बढ़कर 2018-19 में 1.29 लाख हेक्टेयर हो गई है[7]। इसी तरह उत्तराखंड में पशुधन की आबादी में 2014 की तुलना में 2019 में 14% की गिरावट दर्ज की गई है[8]। इसलिए, प्राकृतिक संसाधनों का ह्रास जिस पर स्थानीय अर्थव्यवस्था आधारित है और वनों पर लोगों के सिकुड़ते अधिकारों को इस बृहद स्तरीय पलायन के संदर्भ में देखा जाना चाहिए।

हालाँकि, इस क्षेत्र में प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण के पीछे कई कारक हैं, उनमें से एक है वन उत्पादों पर लोगों के अधिकारों का सिकुड़ना। वन अधिकार अधिनियम के तहत वन पंचायत प्रणाली की बहाली से ग्रामीण आजीविका को समर्थन करने में मदद मिल सकती है। एक ओर जहां लोगों के वनों पर पारम्परिक अधिकारकों की बहाली स्थानीय लोगो की आजीविका और अर्थव्यवस्था के लिए

[7] http://aps.dac.gov.in/LUS/Public/Reports.aspx

[8] http://www.indiaenvironmentportal.org.in/files/file/Basic-Animal-Husbandry-Statistics-2019.pdf

महत्वपूर्ण हैं वहीं दूसरी ओर ये वन आधारित द्वैतीयक और तृतीयक स्तर के उद्यमों के विकास एवं प्रगति की क्षमता भी रखते है।

ग्राम पंचायतों से पलायन के जिलेवार मुख्य कारण (% में)								
जिला	**आजीविका/रोजगार का अभाव**	**स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव**	**शैक्षिक सेवाओं का अभाव**	**बुनियादी आधार भूत संरचना का अभाव**	**कृषि उत्पादन में गिरावट**	**वन्य पशुओं द्वारा खेती का विनाश**	**परिवार के सदस्यों से प्रभावित**	**अन्य**
पर्वतीय जिले								
रुद्रप्रयाग	52.9	8.64	15.67	4.43	4.27	5.11	3.26	5.7
टेहरी	52.43	7.84	18.24	3.07	6.17	4.26	2.47	5.5
उत्तरकाशी	41.77	6.04	17.44	2.29	7.14	4.04	2.1	19.17
चमोली	49.3	10.83	19.73	4.93	4.73	3.09	2.51	4.87
पौड़ी	52.58	11.26	15.78	3.03	5.35	6.27	2.53	3.21
चम्पावत	54.9	6.67	10.24	5.46	6.31	6.65	4.3	5.46
पिथौरागढ़	42.81	10.13	19.52	4.97	4.66	4.08	2.36	11.48
अल्मोड़ा	47.78	8.61	11.75	3.81	8.37	10.99	2.68	6.02
बागेश्वर	41.39	9.09	14.49	4.32	2.18	3.42	1.45	23.65
मैदानी और अर्ध मैदानी जिले								
हरिद्वार	76.6	1.62	2.73	0.05	0.64	0.82	1.69	15.85
देहरादून	56.13	6.33	12.5	1.2	2.08	1.65	1.4	18.7
उधम सिंह नगर	65.63	4.27	3.52	0.6	0.38	2.6	5.4	17.6
नैनीताल	53.7	7.79	10.37	4.96	4.94	6.38	2.1	9.76
उत्तराखंड – योग	**50.16**	**8.83**	**15.21**	**3.74**	**5.44**	**5.61**	**2.52**	**8.48**

7- निष्कर्ष और सिफारिशें

वन पंचायत प्रणाली इस देश में स्थानीय वन आधारित अर्थव्यवस्था में वन की भूमिका को स्वीकार करने के लिए स्वतंत्रता से पूर्व और उसके बाद की अवधि के दौरान विकसित की गई कई संस्थागत व्यवस्थाओं में से एक है। यह प्रणाली वन के संरक्षण और पुरनरुत्पादन में पारंपरिक ज्ञान और

समुदाय की ताकत की महत्वपूर्ण भूमिका को भी स्वीकार करती है। हालांकि, आजादी के बाद नीतिगत स्तर पर हुए क्रमिक संशोधनों ने इन संस्थानों के मूल उद्देश्य की अनदेखी की है। इन परिवर्तनों ने वनों की रक्षा और पुनरुत्पादन के लिए स्थानीय समुदायों की प्रभावशीलता की भी अनदेखी की है।

आज, प्रदेशभर में गठित 12,000 से अधिक वन पंचायतें राज्य वन विभाग द्वारा लिए गए निर्णयों के निष्पादक/आज्ञा पालक से ज्यादा कुछ नहीं हैं। वन पंचायतों की वर्तमान प्रणाली स्थानीय लोगों को वन उपज पर उनके अधिकार और अपने स्वयं के जंगल पर शासन करने के अधिकार से वंचित करती है। वन अधिकार अधिनियम, 2006 की घोषणा के 14 साल बाद भी वनवासी समुदायों के अधिकारों से इनकार वनवासी समुदायों के साथ हुए "ऐतिहासिक अन्याय", जिसका उल्लेख कानून की प्रस्तावना में किया गया था का समाधान नहीं करता है।

वन अधिकार अधिनियम, 2006 के लागू हो जाने के बाद वर्तमान वन पंचायत नियमावली को जारी रखना क़ानूनी रूप से ठीक नहीं है, जिसके निम्नलिखित कारण है:

1. वर्तमान वन पंचायत नियम भारतीय वन अधिनियम, 1927 की धारा 28 की उप धारा 2 के तहत जारी किए गए हैं। राज्य सरकार को इस धारा के तहत केवल आरक्षित वन पर गठित ग्राम वन के लिए नियम जारी करने का अधिकार है। हालांकि, वन पंचायतों का गठन बड़े पैमाने पर राजस्व वन पर किया जाता रहा है। भारतीय वन अधिनियम के तहत राजस्व वन पर ग्राम वन (वन पंचायत के नाम से) गठित करना उक्त कानून के अधिकार क्षेत्र से बाहर है।

2. वन पंचायत के अधीन जंगल के स्वामित्व, नियंत्रण एवं प्रबंधन सम्बन्धी स्थानीय समुदाय के अधिकार कई दशकों से लोग संस्थागत तौर पर उपयोग करते आ रहे है। इस सम्बन्धी सरकारी और गैर सरकारी दस्तावेजों की भी कोई कमी नहीं है। अतः वन अधिकार अधिनियम, 2006 की धारा 3 के तहत कुमाऊं पंचायती वन नियम, 1931 से 1976 तक वन पंचायतों को प्राप्त सभी वन अधिकार बहाल किए जाने योग्य हैं।

उपरोक्त के अलावा वन अधिकार अधिनियम, 2006 की धारा 3 के तहत सामुदायिक वन अधिकार (सीएफआर) प्रदान करने के लिए वन पंचायतों को संस्थागत तंत्र के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए। इसके लिए उन्हें वन अधिकार अधिनियम, 2006 की धारा -5 के तहत सामुदायिक वन संसाधन प्रबंधन समिति (सी.एफ.आर.एम.सी.) के रूप में मान्यता प्रदान की जा सकती है। । ऐसा इसलिए है क्योंकि:

1. वन अधिकार अधिनियम, 2006 के तहत, वनवासी समुदायों को वन और राजस्व विभागों के हस्तक्षेप के बिना सामुदायिक वन के प्रबंधन, संरक्षण और योजनाओं को विकसित करने के लिए पूर्ण स्वायत्तता प्राप्त है। वन पंचायतें भी 1931 से 1976 तक स्थानीय वन प्रबंधन हेतु एक स्वायत्त संस्थान थे। अब जब देश भर में ऐसे पारम्परिक अधिकारों को वन अधिकार अधिनियम के तहत मान्यता दी जा रही है, तो वन पंचायतें भी अपने पूर्व के अधिकार वापस प्राप्त करने के अधिकारी है।

2. वन अधिकार अधिनियम, 2006 के तहत जब एक बार लोगों के पारम्परिक अधिकार को मान्यता मिल जाती है और सामुदायिक वन के संरक्षण और प्रबंधन के लिए एक ग्राम स्तरीय समिति का गठन हो जाता है तो यह अधिनियम ग्रामीणों को स्थायी तरीके से वन उपज निकालने, निपटाने और बेचने की अनुमति देता है।वन पंचायतों को वैसे भी 1976 तक ये अधिकार प्राप्त थे। यदि वन अधिकार अधिनियम के तहत वन पंचायतों की बहाली होती है तो इन पंचायतों को सामुदायिक जंगल से वन उपज की निकासी और बिक्री को नियंत्रित करने में मदद मिल सकती है।

उत्तराखंड के पर्वतीय जिलों में वनों के संरक्षण और पुनरुत्पादन में वन पंचायतों के योगदान को कोई नकार नहीं सकता। वास्तविक वन पंचायतों की फिर से बहाली पूरे पर्वतीय समुदायों को वनों के उत्थान में योगदान देने के लिए लामबंद कर सकती है।

हम अनुशंसा करते हैं कि इस विचार के लिए उत्तराखंड को एक पायलट राज्य माना जाए और उत्तराखंड पंचायती नियम, 2005 को केंद्रीय जनजातीय मामलों के मंत्रालय द्वारा जारी सी.एफ.आर.एम.सी. के गठन और सामुदायिक वन संसाधनों के प्रबंधन और संरक्षण के लिए जारी दिशानिर्देशों के अनुसार संशोधित किया जाए।

उत्तराखंड में इस योजना के सफल हो जाने के बाद, इसे दूसरे चरण में सभी पर्वतीय राज्यों में और फिर तीसरे चरण में सभी राज्यों में विस्तारित किया जा सकता है। हम महसूस करते हैं कि प्रत्येक चरण पांच से 10 साल लंबा हो सकता है, लेकिन इस तरह के बदलाव किसी भी तरह से पीढ़ीगत समय के पैमाने पर होते हैं।

8- सन्दर्भ

- NagahamaKazuyo, Kaoru Saito, Misa Masuda, Masahiko Ota, Hem Gairola, Subodh Kumar Kala, and RandeepRakwal, 2016, 'Forest Commons Use in India: A Case Study of Van Panchayat in the Himalayas Reveals People's Perception and Characteristics of Management Committee', Environment and Ecology Research 4(3): 128-139, 2016
- Somanathan, E. 1991, 'Deforestation, Property Rights and Incentives in Central Himalaya', Economic and Political Weekly, Jan. 26, 1991, Vol. 26, No. 4 (Jan. 26, 1991), pp. PE37-PE39+PE41-PE46
- BalooniKulbhushan, VishwaBallabh and Makoto Inoue, 2007, 'Declining Instituted Collective Management Practices and Forest Quality in the Central Himalayas', Economic and Political Weekly April 21, 2007
- Agrawal Arun, 1995, 'Group Size and Successful Collective Action: A Case Study of Forest Management Institutions in the Indian Himalayas', Paper prepared for presentation at the 4th Annual Meeting of the International Association for the Study of Common Property, Norway. https://dlc.dlib.indiana.edu/dlc/bitstream/handle/10535/1239/Group_Size_and_Successful_

Collective_Action_A_Case_Study_of_Forest_Management_Institutions_in_the_Indian_Himalayas.pdf?sequence=1&isAllowed=y

- Migration Commission, 2018, 'interim report on the status of migration in gram panchayats of Uttarakhand', rural development and migration commission, Uttarakhand, PauriGarhwal
- MOTA, 2014, 'Forest Rights Act, 2006: Act, Rules and Guidelines', Ministry of Tribal Affairs and United Nations Development Program, India. https://tribal.nic.in/downloads/FRA/FRAActnRulesBook.pdf
- Singh, Jeet (2019) Case Study on Implementation of RFA 2006 in Chhattisgarh. Rajiv Gandhi Institute for Contemporary Studies, RGICS, New Delhi. https://www.rgics.org/event/case-study-implementation-of-the-forest-right-act-2006-in-chhattisgarh/
- Singh, Jeet and GautamBandopadhyay, 2020. Role of Common Property Resources in the timeofCOVID-19. Rajiv Gandhi Institute for Contemporary Studies,RGICS, New Delhi.https://www.rgics.org/wp-content/uploads/Role-of-Common-Property-Resources-in-the-time-of-COVID-19.pdf